देख यह स्थिति राजाकी । वाणी मूक बनी संजयकी ।
फिर भी अनुभूति ले सुखकी । पगलायीसी ॥ ८५ ॥

भूलके हर्षावेगसे । कहता था जो राजासे ।
अयोग्य यह इसे । जान कर भी यह ॥ ८६ ॥

फिर कहता है कुरुनंदन । ऐसे तेरे बंधु-पुत्र अर्जुन ।
बोला तब सुन यह श्रीकृष्ण । कहता अति मधुर ॥ ८७ ॥

कृष्णार्जुनके अद्वय-भावका वर्णन—

पूर्व-पश्चिम सागर । देखनेमें भिन्न पर ।
संपूर्ण एक है नीर । उसी भांति ॥ ८८ ॥

श्रीकृष्ण अर्जुन हैं ऐसे । भिन्न हैं केवल तनसे ।
किंतु हैं संवादमें जैसे । सदा अभिन्न ॥ ८९ ॥

स्वच्छ होते हैं जो दर्पणसे । आते ही दोनों सम्मुख जैसे ।
देखते हैं परस्पर ऐसे । आपसमें आप ॥ १५९० ॥

वैसे श्रीकृष्णमें पांडुसुत । देखता है अपने सहित ।
वैसे ही अर्जुनमें अनंत । देखता अपनेको ॥ ९१ ॥

भक्तके लिये देव जो अवकाश । देखता था भक्त वही अवकाश ।
अब दोनोंमें एक ही अवकाश । देखता है पार्थ ॥ ९२ ॥

और कुछ भी नहीं । अपने बिन कहीं ।
यह मानके वहीं । रहे वे दोनों ॥ ९३ ॥

यदि द्वैत ही अब न रहा । तब प्रश्नोत्तर कहां रहा ।
अथवा यदि द्वैत भी रहा । कहां संवाद सुख ॥ ९४ ॥

बोलते थे ऐसा दूजापनसे । निगला द्वैतका संवाद ऐसे ।
वह बोलना मैंने सुना ऐसे । दोनोंका कहा ॥ ९५ ॥

स्वच्छ कर दो दर्पण । सम्मुख रखे हैं जान ।
उसमें देखता कौन । कहे कैसे ॥ ९६ ॥

अथवा दीपके सम्मुख । रखके दीप और एक ।
कौन किसका प्रयोजक । कहे कौन ॥ ९७ ॥

अथवा अर्कके सम्मुख अर्क । उदय हुवा मानो और एक ।
कौन कहें उसमें प्रकाशक । तथा प्रकाश्य कौन ॥ ९८ ॥

करनेमें इसका निश्चय । कुंठित हो जाता है निश्चय ।
दोनों हुए हैं इस समय । संवाद रूप ॥ ९९ ॥

मिलते दो ओघ जिस स्थान । उनको कर देनेमें भिन्न ।
रख दिया बीचमें लवण । क्षणमें होगा जैसे ॥ १६०० ॥

कृष्णार्जुनके संवादमें संजयका लय होना—

वैसे श्रीकृष्ण और अर्जुन । संवादते हैं मन ही मन ।
उसे सोचनमें मेरा मन । हुवा है वैसे ॥ १ ॥

ऐसे संजय कहता नहीं । सात्विक भाव इतनेमें ही ।
ले जाते स्मृति न जाने कहीं । संजयपनकी ॥ २ ॥

रोमांचित हुवा बदन । वैसे ही संकुचित तन ।
स्वेद स्तंभको है कंपन । रोकता एक ॥ ३ ॥

अद्वय-आनंदके स्पर्शसे । रसमय हुई दृष्टि जैसे ।
प्रेमका सोता ही बना जैसे । नहीं ये अश्रु ॥ ४ ॥

न जाने उसमें क्या नहीं समाता था । अथवा गलेमें कहां क्या अटका था ।
किंतु सिसकीसे वाणी-मार्ग रुका था । न उमडते शब्द ॥ ५ ॥

अथवा अष्ट सात्विक भाव । बनाते थे संजयको ठाव ।
तब हुवा संजय चौराह । संवाद सुखका ॥ ६ ॥

उस सुखकी ऐसी जाति । अपने आप होती शांति ।
आयी है फिर देह-स्मृति । संजयकी तब ॥ ७ ॥

स्थिर होकर वह आनंद । कहता है जो उपनिषद ।
नहीं जानते व्यास-प्रसाद– । से सुना मैंने ॥ ८ ॥

व्यासप्रसादाच्छ्रुतवानेतद् गुह्यमहं परम् ।
योगं योगेश्वरात्कृष्णात्साक्षात्कथयतः स्वयम् ॥ ७५ ॥

वह एकांतकी गोष्टि । ब्रह्मत्वकी पडी मिठी ।
मैं तू पनकी जो दृष्टि । मिट गयी पूरी ॥ ९ ॥
योग जो ये संपूर्ण । आते हैं जिस स्थान ।
सुलभ वे वचन । किये व्यासदेवने ॥ १६१० ॥
दिखाकर अर्जुनका कारण । बता करके अपनेको भिन्न ।
अपने दिये बोल वचन । आप ही देव ॥ ११ ॥
वहां हैं मेरे ये श्रोत्र । सुननेमें हुए पात्र ।
क्या कहें यह स्वतंत्र । सामर्थ्य गुरूका ॥ १२ ॥

राजन् संस्मृत्य संस्मृत्य संवादमिममद्भुतम् ।
केशवार्जुनयोः पुण्यं हृष्यामि च मुहुर्मुहुः ॥ ७६ ॥

बोलनेमें हुवा वह विस्मित । जिससे हो गया है देह विस्मृत ।
रत्नमें हो रत्नसे प्रकाशित । छिपता है जैसे ॥ १३ ॥
हिमालयके जो सरोवर । होते चंद्रोदयमें काश्मीर ।
सूर्योदयमें पिघल कर । बहते जैसे ॥ १४ ॥
वैसे होते ही शरीरका स्मरण । संजय करता संवाद धारण ।
यही होता देह विस्मृतिके कारण । दूसरी बार ॥ १५ ॥

तच्च संस्मृत्य संस्मृत्य रूपमत्यद्भुतं हरेः ।
विस्मयो मे महान् राजन् हृष्यामि च पुनः पुनः ॥ ७७ ॥

योग - गुह्य महाश्रेष्ठ कृपासे व्यासदेवकी ।
सुना प्रत्यक्ष जो मैंने कहा योगेश कृष्णने ॥ ७५ ॥
जो कृष्णार्जुन संवाद राजन् अद्भुत पावन ।
सोचके मनमें भारी हर्षता मैं पुनः पुनः ॥ ७६ ॥
स्मरके वह जो रूप हरिका अति अद्भुत ।
राजन् विस्मित होके मैं नचता हूं पुनः पुनः ॥ ७७ ॥

फिर खडा हो कहता नृप । श्रीहरिका देख विश्व-रूप ।
देख कर ऐसे बैठा कैसे चुप । किस प्रकार ॥ १६ ॥

न देख कर जो दीखता । न होकर जो है रहता ।
न स्मरकर भी स्मरता । उसे टालता कैसे ॥ १७ ॥

देख कर यह चमत्कार । बैठनेमें भी नहीं विस्तार ।
मुझ सह वह महापूर । ले जाता बहाके ॥ १८ ॥

ऐसा है श्रीकृष्णार्जुन । संवाद संगम स्थान ।
कर देता तिल-दान । अहंताका मैं ॥ १९ ॥

उमड असंवृत्त आनंद । अलौकिक सिसक सद्गद ।
करता श्रीकृष्ण कृष्ण शब्द । अपने आप ॥ १६२० ॥

धृतराष्ट्रकी जडता दर्शन—

ये जो अष्ट-सात्विक भाव । न जाने कौरवका गांव ।
तब कल्पना हो संभव । कैसे राजाको ॥ २१ ॥

उस सुख-लाभकर अनुभव । अपनेमें लाकर स्थिर भाव ।
पचालिये अष्ट सात्विक-भाव । संजयने अपनेमें ॥ २२ ॥

इतनेमें है राजा कहता । युद्धमें कब क्या होता जाता ।
यह सब कहने निमित्त । रखा तुझे व्यासने ॥ २३ ॥

वह छोड़ कर तू यह ऐसे । बिठाया गया किस उद्देश्यसे ।
सब भूलकर क्या ऐसे वैसे । बोलता अप्रासंगिक ॥ २४ ॥

वनका जब प्रासादमें आता । दस दिशा सब सूना मानता ।
या उदयसे पिशाच जानता । रात हुई अब ॥ २५ ॥

जिसका जो गौरव न जानता । उसको विपरीत ही लगता ।
तभी है अप्रासंगिक कहता । इसमें क्या अचंबा ॥ २६ ॥

फिर कहता कह प्रस्तुत । लडाई चली है जो सांप्रत ।
उसमें किसकी हार जीत । होती यह कह तू ॥ २७ ॥

वैसे कहता अपना मन । सहज विचार कर क्षण ।
पराक्रममें है दुर्योधन । अधिक हमारा ॥ २८ ॥

यह छोड़ करभी कहां । सैन्य रहा है ड्योढ़ा जहां ।
विजय निश्चय है वहां । सहज प्राप्त ॥ २९ ॥

हमको अब लगता ऐसे । किंतु तेरा ज्योतिष है कैसे ।
कह संजय जैसे है वैसे । मुझसे तेरी बात ॥ १६३० ॥

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः ।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥ ७८ ॥

गीताकी फलश्रुति—

प्रश्न सुन यह संजय कहता । किसका क्या होगा यह न जानता ।
जहां आयुष्य वहां जीवन होता । जानता यह ॥ ३१ ॥

चंद्र जहां चंद्रिका । शंभु जहां अंबिका ।
संत्र जहां विवेका । होता ही है ॥ ३२ ॥

नृपति जहां सैनिक । सौजन्य जहां संपर्क ।
अग्निमें जैसे दाहक । शक्ति है होती ॥ ३३ ॥

दया जहां वहां धर्म । वहां सुखायाम ।
सुखमें पुरुषोत्तम । रहता वैसे ॥ ३४ ॥

वसंत जहां वहां वन । वन जहां वहां सुमन ।
सुमन सह है गूंजन । सदा भ्रमरोंका ॥ ३५ ॥

गुरु जहां वहां ज्ञान । ज्ञानसे आत्म-दर्शन ।
दर्शनमें समाधान । होता नित्य ॥ ३६ ॥

जहां भाग्य वहां विलास । विलासमें रहा उल्हास ।
जहां सूर्य वहां प्रकाश । होता सहज ॥ ३७ ॥

योगेश्वर जहां कृष्ण जहां पार्थ धनुर्धर ।
वहां मैं देखता नित्य धर्म श्री जय वैभव ॥ ७८ ॥

वैसे सकल पुरुषार्थ । होते हैं स्वामी सह नाथ ।
जहां रहता है श्रीनाथ । वहां है श्री ॥ ३८ ॥

जहां अपने पति सहित । जगन्माता रहती है नित ।
अणिमादि सिद्धि दास्य-रत । रहती हैं वहां ॥ ३९ ॥

स-शरीर कृष्ण विजय-रूप । रहता सदा जिसके समीप ।
उसीके साथ जय है आप । चलेगा सदैव ॥ १६४० ॥

विजय नामसे पार्थ विख्यात । विजय स्वरूप श्रीकृष्ण नाथ ।
श्रिया सह विजय है निश्चित । उसी स्थान ॥ ४१ ॥

ज्ञानेश्वरका राष्ट्र-प्रेम—

जिस देशका है वह घास । उसमें माता पिताका है वास
कल्पतरुको भी स-उल्हास । जीतेगा वह ॥ ४२ ॥

उस देशका सब पाषाण । क्यों न हो चिंतामणि संपूर्ण ।
उस भूमिमें है क्या कारण । न आये चैतन्य ॥ ४३ ॥

उस देशके जो नदी प्रवाह । बहें न क्यों लें अमृत अथाह ।
अचरण नहीं है राजन् यह । विचार कर देख ॥ ४४ ॥

जिसके सहज शब्द । बनते हैं जहां वेद ।
सदेह सच्चिदानंद । क्यों न कहें उन्हे ॥ ४५ ॥

अर्जुनका भाग्य—

स्वर्गापवर्ग दोनों मान । पद हैं उसके आधीन ।
माता लक्ष्मी और श्रीकृष्ण । पिता जिनके साथ ॥ ४६ ॥

जिसका कहना सदा लोभ । उस लक्ष्मीका जो वल्लभ ।
सर्व सिद्धि सह है स्वयंभु । खडा है जहां ॥ ४७ ॥

बनता है समुद्रसे मेघ । उपयोगमें उससे चांग ।
वैसे पार्थको आया सुयोग । इस समय ॥ ४८ ॥

कनकत्व दीक्षाका जो गुरु । परिस लोहसे श्रेष्ठ तर ।
किंतु है चलाता व्यवहार । वही जगका ॥ ४९ ॥

गुरुत्व होता है यहां निम्न । करेगा ऐसा कोई कथन ।
प्रकाश देता है दीप बन । अग्नि ही श्रेष्ठ ॥ १६५० ॥

परमात्मासे शक्ति ले अर्जुन । हुवा है उससे भी बलवान ।
उपरोक्त स्तुति गौरव सुन । तुष्ट होता देव ॥ ५१ ॥

सभी गुणोंमें पुत्रसे हीन । होना चाहता बापका मन ।
यह इच्छा श्रीकृष्णकी मान । हुई सफल ॥ ५२ ॥

अथवा मानो ऐसे नृप । हुवा है पार्थ कृष्णकृपा ।
जिस ओर वह साक्षेप । जीत है वहीं ॥ ५३ ॥

वही विजयका निश्चित स्थान । इसमें संदेह नहीं है जान ।
वहां जो जय नहीं मिला मान । वह जय ही नहीं ॥ ५४ ॥

इसीलिये जहां श्री श्रीकांत । वहां है तुम्हारा पांडुसुत ।
वहां सदा विजय समस्त । अभ्युदय सारा ॥ ५५ ॥

यदि व्यासके वचन पर । विश्वास सच्चा है नृपवर ।
तब मेरे शब्द मानकर । चलना ध्रुव है ॥ ५६ ॥

जहां वह श्रीवल्लभ । जहां है भक्त-कदंब ।
वहां सुख और लाभ । होगा कल्याणका ॥ ५७ ॥

यदि होंगे ये बोल असत्य । न कहाऊंगा व्यासका शिष्य ।
गर्जन कर यह अवश्य । किया हाथ ऊपर ॥ ५८ ॥

एक श्लोकमें भारतका सार—

एवं भारतका सब सार । एक श्लोकमें ला भरकर ।
देता है संजय नृपवर । धृतराष्ट्रके हाथमें ॥ ५९ ॥

जैसे वन्हि कितना न जानकर । उसे बातिके अग्रपे रखकर ।
लाते सूर्यकी अनुपस्थिति पर । सहायार्थ ॥ १६६० ॥

वैसे शब्द ब्रह्म अनंत । हुवा सव्वा लक्ष भारत ।
भारतके जो शत-सात । गीता सर्वस्व ॥ ६१ ॥

उन्हीं जो सात शतोंका । इत्यर्थ शेष श्लोकका ।
व्यास-शिष्य संजयका । पूर्णोद्गार ॥ ६२ ॥

इसी एक श्लोक पर । पूर्ण विरक्त होकर ।
सब इच्छाओंका सार । पायेगा निश्चित ॥ ६३ ॥

गीता महिमा वर्णन—

ऐसे ये श्लोक शत-सात । गीता पद उठाते हैं नित ।
ये शब्द क्या परमामृत । कहें आकाशका ॥ ६४ ॥

या आत्मराजाकी गीता सभा । इसे उठाते हैं ये श्लोक स्तंब ।
अनुभवती ऐसी प्रतिभा । यहां मेरी ॥ ६५ ॥

अथवा यह गीता सप्तशती । जो मंत्र प्रतिपाद्य भगवती ।
मोह-महिषासुरसे दे मुक्ति । आनंदती है ॥ ६६ ॥

इसीलिये काया वाचा मन । करता जो इसका सेवन ।
उसे दे स्वानंद सिंहासन । करती सम्राट ॥ ६७ ॥

अथवा अविद्याका अंधार । जीतने सूर्यसे बाजी मार ।
ऐसे श्लोक गीता कहकर । प्रकट किये देवने ॥ ६८ ॥

या श्लोकाक्षर द्राक्षालता । फैल मांडव बनी गीता ।
संसार पथिक वे जो श्रांत । विश्रांति ले यहां ॥ ६९ ॥

या भाग्यवंत संत-अलि-कुल । बनाकर श्लोक-रूप कमल ।
श्रीकृष्ण तडागमें खिली बेल । गीता-कमलकी ॥ १६७० ॥

अथवा श्लोक नहीं ये जान । लगता गीताका महिमान ।
बखानते हैं बंदी जन । अखंड जैसे ॥ ७१ ॥

या श्लोकोंका किला बनाकर । सप्त-शत करके सुंदर ।
सर्वागम आये गीता पुर । बसानेको यहां ॥ ७२ ॥

या निजकांता आत्मासे । मिलने आयी प्रीतिसे ।
बाहु पासारके ऐसे । श्लोक रूप ॥ ७३ ॥

या गीता कमलका भृंग । या गीता सागर तरंग ।
या हैं श्रीहरिके तुरंग । गीता रथके ॥ ७४ ॥

या श्लोक सर्व तीर्थ समूह । मिले हैं गीता-गंगा प्रवाह ।
अर्जुन सिंहस्थ पर्व यह । आया है मान ॥ ७५ ॥

या नहीं यह श्लोक श्रेणी । किंतु अचिंत्य चिंतामणि ।
या निर्विकल्पमें लागणी । कल्पतरुकी ॥ ७६ ॥

सात शत श्लोक हैं जो ऐसे । बढे चढे हैं एक एकसे ।
किसका वर्णन करें कैसे । चुनाव करके ॥ ७७ ॥

दीप पहला क्या पिछला । छोटा या रवि मोटा भला ।
भेद गहरा या उथला । क्या अमृत सिंधुमें ॥ ७८ ॥

या बछिया और बछौना । कामधेनुमें भेद नाना ।
व्यर्थकी है गोष्टी करना । न करने जैसी ॥ ७९ ॥

आदि है अथवा अंत । गीता श्लोककी है बात ।
जैसे पुष्प पारिजात । नया या पुराना ॥ १६८० ॥

इसमें नहीं न्यून अधिक । समान इसके सभी श्लोक ।
तथा न वाच्य वाचक । भेद भी इसमें ॥ ८१ ॥

इस शास्त्रमें है एक । श्रीकृष्ण वाच्य वाचक ।
जानते हैं सभी लोक । प्रसिद्ध यह ॥ ८२ ॥

इसका अर्थदान और पठन । फल-प्राप्तिमें एकही समान ।
वैसे वाच्य वाचकमें अभिन्न । भाव साधना यह ॥ ८३ ॥

इसीलिये मुझे इस समय । कहना नहीं है कोई विषय ।
मानो सब गीता है वाङ्मय । मूर्ति प्रभुकी ॥ ८४ ॥

शास्त्र-पठनमें अर्थ-फल । देकर जाते हैं ये सकल ।
ऐसे नहीं यह केवल । पर-ब्रह्मही है ॥ ८५ ॥

जगतपे करुणाकर । महानंद सुगम कर ।
अर्जुनको निमित्त कर । किया प्रकट ॥ ८६ ॥

चकोरको कर निमित्त । त्रिभुवनको जो संतप्त ।
शांत करता कलावंत । चंद्रमा जैसे ॥ ८७ ॥

अथवा गौतमको बनाके साधन । मिटाते कलिकाल ज्वरका पीडन ।
नीचे छोड दिया शंकरने महान । गंगा-प्रवाह ॥ ८८ ॥

वैसे गीताका यह पय । बनाके वत्सा धनंजय ।
देती श्रीकृष्ण रूप गाय । विश्वको बहु ॥ ८९ ॥

श्रद्धासे यदि यहां डूबेंगे । आप तद्रूप बन जायेंगे ।
पाठसे यदि-जीभ करेंगे । गीली तो भी ॥ १६९० ॥

एक अंशसे यदि पारस । लोहको कर देता है स्पर्श ।
तो भी वह होता है सरस । सुवर्ण जैसे ॥ ९१ ॥

वैसे पाठ रूपसे यह कटोरा । होंठोंको लगायेंगे ये श्लोक सारा ।
ब्रह्म-प्रेमसे होगा शरीर सारा । सतेज पुष्ट ॥ ९२ ॥

उस ओर करके यदि टेड़ा मुख । लेंगे यदि थोडा श्रवण सुख ।
उससे भी मिलेगा वहां देख । होगी वही प्राप्ति ॥ ९३ ॥

इसका श्रवण पाठ और अर्थ । नहीं देता है मोक्षसे अन्य बात ।
नहीं न कहता है दाता समर्थ । किसीको जैसे ॥ ९४ ॥

पा लेनेमें यों संपूर्ण । पूर्ण है गीताका सेवन ।
अन्य शास्त्रोंका कारण । रहता है फिर ॥ ९५ ॥

कृष्णार्जुनकी खुली । गोष्टी जो ऐसी निराली ।
व्यासने की करतल- । में आए ऐसी ॥ ९६ ॥

शिशुको ले बैठती लाड़से । माता भोजनके निमित्तसे ।
कौर बना देती है वह उसे । जैसे चाहता वह ॥ ९७ ॥

अथवा जो असीम पवन । करनेमें अपना आधीन ।
बनाते हैं पंरवासा साधन । शयाने जैसे ॥ ९८ ॥

वैसे शब्दसे न हो लाभ । उसके बनाके अनुष्टुभ ।
सम हो श्री शूद्रकी प्रतिभा । कहा ऐसे ॥ ९९ ॥

जैसे यदि स्वातीका नीर । न बनाता मोति सुंदर ।
तो सुंदर शरीर पर । शोभता कैसे ॥ १७०० ॥

नाद यदि वाद्यमें न आता । तब है कैसे गोचर होता ।
फूल यदि गंध नहीं देता । तो परिमल कैसे ॥ १ ॥

मधुर नहीं होता यदि अन्न । चखती है क्या फिर रसना ।
तथा दर्पण बिन नयन । नयन देखे कैसे ॥ २ ॥

दृष्टा जो श्रीगुरुमूर्ति । नहीं आते दृश्य-पंक्ति ।
तब कैसे हैं उपास्ति । पाते उनको ॥ ३ ॥

वैसे वस्तु जो असंख्यात । उनको संख्या शत सात ।
न करते वह प्रस्तुत । जान सकते कौन ॥ ४ ॥

मेघ सिंधुका पानी लेता । तो भी विश्व मेघ देखता ।
असीम हाथमें न आता । इसीलिये ॥ ५ ॥

तथा वाचामें जो नहीं आता । वह सुंदर श्लोक बनाता ।
सुखसे कान भोग सकता । ऐसे होता क्या ? ॥ ६ ॥

इसी लिये व्यासका है महान । हुवा विश्वमें उपकार मान ।
आकार दे श्रीकृष्ण कथन । किया ग्रंथ ॥ ७ ॥

कविकी नम्रता—

और वही है जो मैं अब । व्यासके देख पद सब ।
लाया श्रवण पथमें शुभ । देश भाषाके ॥ ८ ॥

व्यासादिकोंके उन्मेख । होते जहां है साशंक ।
वहां पे मैं एक रंक । बोलता बहु ॥ ९ ॥

किंतु गीतेश्वर है भोला । ले व्यासोक्ति सुमनमाला ।
फिर भी मेरे दूर्वादला । ना नहीं कहता ॥ १७१० ॥

जैसे क्षीर-सिंधुके तट पर । पानी पीने आते हैं गज ढेर ।
किंतु रोकता क्या सिंधु घुरघुर । तू न आ कहके ॥ ११ ॥

पंखेरू फूटा हुवा पर । न उडता नभमें स्थिर ।
गगनाक्रमी जो सत्वर । गरुडभी वहीं ॥ १२ ॥

राजहंसका चलना । पृथ्वीपे उत्तम माना ।
तो क्या औरोंका चलना । मानना क्या वर्ज ॥ १३ ॥

अजी ! अपनेमें लेकर आकाश । जल भरलेता बहुत कलश ।
कुलेमें होता है अल्पसा आकाश । आता न उतना पानी ? ॥ १४ ॥

मशालका आकार विशेष । देता वह बहुत प्रकाश ।
बाति भी अपना-सा तेजस । देती है न ? ॥ १५ ॥

अजी ! समुद्रका विस्तार है जैसा । उसमें आकाश आभास वैसा ।
छोटेसे डबरेमें पड़ता वैसा । बिंब भी छोटा ॥ १६ ॥

जैसे व्यासादिककी महामती । इस ग्रंथको बखानने आती ।
हमने भी मानके यही युक्ति । कही अपनी भी ॥ १७ ॥

सागरमें जहां जलचर । संचरते हैं पर्वताकार ।
वहां जानता हूं मैं शफर । तरना जानता ॥ १८ ॥

पास ही रहकर अरुण । करता है सूर्यका दर्शन ।
तब भूतलकी चींटी जान । न देखता क्या सूर्य ॥ १९ ॥

इसीलिये हम हैं प्राकृत । देशी आकारमें लाते गीता ।
यह करना है अनुचित । कैसे भला ॥ १७२० ॥

बाप जहां आगे चलता । पुत्र ही वही अनुगमता ।
पुत्र वहां न पहुंचता । नहीं कोई कारण ॥ २१ ॥

वैसे व्यासका कर अनुकार । भाष्यकारोंसे राह पूछ कर ।
अयोग्य वहां न पहुंचकर । जाऊंगा कहां मैं ॥ २२ ॥

श्रीगुरु निवृत्तिनाथकी महिमा—

तथा पृथ्वी है जिसकी क्षमा । न ऊबती स्थावर जंगमा ।
जिसके अमृतसे चंद्रमा । देता विश्वको शांति ॥ २३ ॥

जिसके अंगका अंश भर । तेज लेकर ही जो भास्कर ।
करता है विपत्तियां दूर । अंधारकी ॥ २४ ॥

समुद्रको जिसका तोय । तोयको जिसका माधुर्य ।
माधुर्यमें जो है सौंदर्य । उससे ही ॥ २५ ॥

पवनको जिसका बल । जिससे आकाश विशाल ।
तथा ज्ञान भी उज्ज्वल । उससे सार्वभौम ॥ २६ ॥

जिससे हैं वेद सुभाष । सुख है जिससे सोल्हास ।
रहने दे जो है रूपस । विश्व उससेही ॥ २७ ॥

सर्वोपकारी वह समर्थ । सद्गुरु है श्रीनिवृत्तिनाथ ।
बैठ कर मुझमें ही स्थित । है निरंतर ॥ २८ ॥

उसी श्रीगुरुसे है गीता-ज्ञान । मिला मुझे किसी श्रम बिन ।
करना देशीमें वह कथन । इसमें क्या आश्चर्य ॥ २९ ॥

श्रीगुरूके नामसे मृत्तिका- । मूर्ति रख वनमें विद्याका ।
टेव कर डंका श्रेष्ठताका । बताया भिल्लने ॥ १७३० ॥

जो चंदनसे वेष्टित । होते चंदनसे सुगंधित ।
वसिष्ठकी काठी प्रकाशित । हुई सूर्यसी स्पर्धासे ॥ ३१ ॥

और मैं हूं यहां चित्त संपन्न । कृपा-दृष्टिसे होता पदासीन ।
ऐसा श्रीगुरु है सामर्थ्यवान । सिरपे मेरे ॥ ३२ ॥

सहज ही है जो स्वच्छ दृष्टि । उसे मिलती सूर्यकी पुष्टि ।
वह न देखता ऐसी गोष्टि । क्या है विश्वमें ॥ ३३ ॥

इसीलिये है मेरे नित्य-नूतन । श्वासोच्छ्वास करते काव्य कथन ।
गुरुकृपासे सभी संभव जान । कहता ज्ञानदेव ॥ ३४ ॥

ज्ञानेश्वरी ग्रंथके विषयमें—

लाया मैं इसी कारण । गीतार्थ देशीमें जान ।
किया है इसका जन- । दृष्टिका विषय ॥ ३५ ॥

किंतु देशी बोलमें रंगकर । जान लेंगे गीता-पद मधुर ।
न होगा मूल न जानकर । एक पक्षीय ॥ ३६ ॥

और कहेंगे यदि मूल गा कर । बनेगा वह मूलका अलंकार ।
वैसे आएगा देशीमें भी सुंदर । गीतार्थ पूर्ण ॥ ३७ ॥

चार्वांगी पर न चढे भूषण । फिर भी वह शोभती जान ।
सुंदर तनुका बना भूषण । वह अति योग्य ॥ ३८ ॥

या मोतियोंकी ऐसी जाति । सुवर्णमें भी लाती कांति ।
या अपने रूपमें अति । सजते आप ॥ ३९ ॥

या मोतिया वसंतागमनका । खुला हो या गूंथा हुवा हो उसका ।
एकसा परिमल होता जिसका । उसी प्रकार ॥ १७४० ॥

मूल सहित भी जो है सजता । उसके बिना भी जो है शोभा लाता ।
रचा मैंने ऐसा लाभद गाथा । ओवी छंदमें ॥ ४१ ॥

इसमें अबाल सुबोध । ओवीके छंदमें प्रबंध ।
ब्रह्म-रसमें हैं सुस्वाद । गूंथे हैं अक्षर ॥ ४२ ॥

कभी चंदनका तरुवर । सुगंधके लिये फूलकर ।
फलने तक लगाके देर । बैठना पड़ता क्या ॥ ४३ ॥

यह प्रबंध जो सुनता । तत्क्षण समाधिमें जाता ।
कान व्यसन ही लगाता । व्याख्यान सुननेका ॥ ४४ ॥

तथा पाठ करनेसे नित्य । आता है पाठकमें पांडित्य ।
अनुभवनेसे है लालित्य । भूलेगा अमृत ॥ ४५ ॥

कवित्व हुवा ऐसे यह सरल । विश्रांति स्थान हुवा सुख-महल ।
श्रवण मननसे ध्यान निर्मल । जीतेगा यह ॥ ४६ ॥

स्वानंद भोग यह बढिया । देगा किसीको भी हो सदया ।
पोषित होंगी सभी इंद्रियां । सुनने केवल ॥ ४७ ॥

चंद्रामृत करके स्वाधीन । भोगता चकोर बुद्धिमान ।
किंतु पाते हैं चंद्र किरण । सभी लोग ॥ ४८ ॥

वैसे अध्यात्म शास्त्रमें निपुण । अंतरंगके अधिकारी जान ।
किंतु वाक्चातुर्यसे सभी जन । पाएंगे सुख ॥ ४९ ॥

वैसे श्रीनिवृत्तिनाथका । महान गौरव है नीका ।
ग्रंथ नहीं यह उनका । कृपा-गौरव ॥ १७५० ॥

इस ज्ञानकी आदि परंपरा—

क्षीरसागरका परिसर । माता शक्तिका कर्ण कुहर ।
बोला त्रिपुरारी श्रीशंकर । न जाने कब ॥ ५१ ॥

क्षीर कल्लोलमें रत । मकरोदरमें गुप्त ।
था यह उसके हाथ । आया सहज ॥ ५२ ॥

वह श्रीमत्स्येंद्र सप्त-श्रंगपर । भग्न तन चौरंगीसे निलकर ।
कृपासे किया उसको सशरीर । पूर्णांग पूर्ण ॥ ५३ ॥

फिर अखंड समाधि भोगना । उनको होनेसे यह वासना ।
दिया श्रीगोरक्षनाथको दान । वह मुद्रा ॥ ५४ ॥

उन्होने योगाब्जिनी सरोवर । विषय विध्वंस एकैक्य वीर ।
उस पदमें वह सर्वेश्वर । किया अभिषेक ॥ ५५ ॥

फिर वह जो शांभव । अद्वयानंद वैभव ।
प्राप्त किया स-प्रभव । श्रीगहनीनाथने ॥ ५६ ॥

फिर वह कलिकाल ग्रस्त । भूतमात्रका करने हित ।
आज्ञा दी जो निवृत्तिनाथ । इस भांति ॥ ५७ ॥

यह जो आदि गुरु शंकर । से चला शिष्य-परंपरा ।
बोध लाभ आया है संसार । हम तक जो ॥ ५८ ॥

वह सब लेकर तू संपूर्ण । कलिसे ग्रस्त जीवोंका जीवन ।
संकटसे करने विमोचन । सहाय कर तू सत्वर ॥ ५९ ॥

पहले ही वह अति कृपालु । फिर है श्रीगुरु आज्ञाका बोल ।
मिला जैसे सहज वर्षाकाल । मेघोंको नित ॥ १७६० ॥

पीडितोंकी करुणाके कारण । वर्षा हुई शांत रसकी मान ।
तभी है यह गीतार्थ ग्रथन । हुवा उससे ॥ ६१ ॥

मैं केवल निमित्त मात्र हूं—

इतनेमें मैं आर्त चातक । स्वेच्छासे हुवा गुरु सम्मुख ।
बना यशका कारण एक । इस प्रकार ॥ ६२ ॥
ऐसे है गुरु परंपरागत । अपना समाधि-धन जो प्राप्त ।
दिया रचकर यह ग्रंथ । स्वामीने मुझे ॥ ६३ ॥
वैसे मैं हूं अपढ अशिक्षित । नहीं की स्वामी-सेवा अपेक्षित ।
कैसे हुवा रचनामें समर्थ । ऐसे ग्रंथके ॥ ६४ ॥
किंतु है सच ही श्रीगुरुनाथ । बनाके मुझे इसका निमित्त ।
ग्रंथ-रूपसे करते हैं हित । विश्वका चिरंतन ॥ ६५ ॥
फिर भी मैंने पुरोहित बन । किया हो कम अधिक कथन ।
मातृ-भावसे आप संत जन । सहन करें मुझे ॥ ६६ ॥
कैसे करना शब्दका वचन । या चढ़ते प्रमेयोंका व्याख्यान ।
नहीं मुझे इसका भी ज्ञान । अलंकार क्या है ? ॥ ६७ ॥
श्रीगुरुकी मैं कठपुतली । जैसे वे चलाते वैसे चली ।
मुझे आगे कर स्वयं ही बोली । गुरु-माता मेरी ॥ ६८ ॥
इसलिये मैं कोई गुण-दोष । विषयमें क्षमा बिना विशेष ।
आचार्य-संजात ग्रंथ अशेष । कहता हूं मैं ॥ ६९ ॥

यदि इसमें कोई न्यूनता रही तो इसका दायित्व आप पर है—

तथा आप संत समाजमें । यदि न्यून रहा हो इसमें ।
वह मिटा नहीं तो स्नेहमें । रूठेंगे आपसे ॥ १७७० ॥
होने पर भी पारसका स्पर्श । न मिटिती लोहेकी हीन दशा ।
तब इसका किसका है दोष । कहें आप ही ॥ ७१ ॥
नालेको यही करना । गंगामें जाके डूबना ।
फिर भी गंगा न बना । दोषि किसका ॥ ७२ ॥

इसीलिये मैं अति भाग्यसे । आया संतोंके पगमें ऐसे ।
तभी विश्वमें मुझे इससे । स्वामी है किसकी ॥ ७३ ॥

जीवन कृतार्थ हुवा है आज——

अजी ! मेरे स्वामी नाथ । मुझे जोड दिये संत ।
हुवा सबमें कृतार्थ । इससे आज ॥ ७४ ॥

आपके साथ रहकर । फूटे मुझमें सुखांकुर ।
तथा ग्रंथका हठ पूरा । हुवा आज ॥ ७५ ॥

अजी ! अब कनकसे अखिल । ढाल सकेंगे यह भूमंडल ।
चिंता रत्नोंसे सप्त-कुलाचल । कर सकेंगे निर्माण ॥ ७६ ॥

अजी ! जो सागर सात । उनमें भरना अमृत ।
होगी तारोंसे तारानाथ । रचना सहज ॥ ७७ ॥

तथा कल्पतरुका आराम । लगाना नहीं विषम ।
किंतु है गीतार्थ मर्म । न होगा स्पष्ट ॥ ७८ ॥

एक मैं ऐसा सर्व-मूक । बोल करके देशी भाषा ।
आंखोंसे ही ले सके लोक । ऐसा करता हूं ॥ ७९ ॥

इतना बड़ा ग्रंथ सागर । उतार ले जाना पैलतीर ।
फडकाना यश-ध्वज फिर । वहां पहुंचनेका ॥ १७८० ॥

गीतार्थका बनाकर भवन । कलशका मेरू गिरि महान ।
उसमें मैं गुरुलिंग पूजन । करता हूं यह ॥ ८१ ॥

गीता है जो निष्कपट माता । उसे भूल शिशु भटकता ।
उसका यह मिलन होता । आपके पुण्यसे ॥ ८२ ॥

आप संतोंने जो कुछ दिया । वही सब मैं बोलता भया ।
यह वैसे अल्प कहा जाय । कहता ज्ञानदेव ॥ ८३ ॥

क्या बोलूं मैं अब बोल । पा लिया मैंने सब जन्म-फल ।
ग्रंथ-सिद्धिका यह जो निर्मल । देखा समारोह ॥ ८४ ॥

मैंने जिस जिसकी आशा । की कर आपका भरोसा ।
वह पूर्ण किया बहुतसा । सुखसे आपने ॥ ८५ ॥

यह अनुपम ग्रंथरत्न है—

मुझसे इस ग्रंथका महान । बना लिया नव-सृष्टि निर्माण ।
देखके हसते मन ही मन । विश्वामित्रको हम ॥ ८६ ॥

देख कर भी त्रिशंकुका दोष । विधाताको ओछा बनाके खास ।
बनाई सृष्टि होती है जो नाश । वैसी नहीं है यह ॥ ८७ ॥

शंभुने कर उपमन्युका लोभ । उसको दिया है क्षीराब्धिका लाभ ।
किंतु वह भी रहा है विषगर्भ । नहीं उपमायोग्य ॥ ८८ ॥

अंधकारका जो निशाचर । निगलता जब चराचर ।
तारता भी है यदि भास्कर । देकर ताप ॥ ८९ ॥

संतप्त जगतके कारण । चंद्र देता शीतल किरण ।
उससे भी यह न समान । चंद्र है कलंकित ॥ १७९० ॥

आप संतोंने जो मुझपर । ग्रंथ-रूप किया उपकार ।
मैं कहता हूं कर विचार । विश्वमें अनुपम ॥ ९१ ॥

यह जो आपके कारण । सिद्ध हुवा है धर्म-कीर्तन ।
यहां रहा सेवकपन । मेरा केवल ॥ ९२ ॥

सेवाका मूल्य-रूप प्रसाद-दान—

मुझको दे अब विश्वात्मक देव । इस वाग्यज्ञ यज्ञसे तुष्ट हो सदैव ।
संतुष्ट होकर दें यह वैभव । पसाय दानका ॥ ९३ ॥

मिटे इससे खलोंकी खलता । उनमें बढे सत्कर्म-प्रियता ।
प्राणियोंमें परस्पर मित्रता । हो जीव भावकी ॥ ९४ ॥

मिटे दुरितका तिमिर । विश्व देखे स्वधर्म-भास्कर ।
जो जो चाहे सो पावे वर । प्राणिमात्र ॥ ९५ ॥

बरसत रहे सकल मंगल । बने सदा ईश-निष्ठोंके मंडल ।
अनवरत जीव यह सकल । पाये भूमंडलके ॥ ९६ ॥

कल्पतरुके हो चलते उपवन । गांव हो चैतन्य चिंतामणिके खान ।
सतत अमृत-सिंधु सम वचन । मिले परस्पर ॥ ९७ ॥

चंद्रमा हो यहां अलांछन । तथा मार्तंड हो ताप हीन ।
सदा प्रिय हो सभी सज्जन । सबसे आप्त ॥ ९८ ॥

अथवा पाये सभी सुख । पूर्ण होकर तीनो लोक ।
और भजे आदि पुरुख । अखंडित ॥ ९९ ॥

तथा है इस लोकमें जिसे । यह ग्रंथही जीवन उसे ।
पाये पूर्ण विजय इससे । दृष्ट अदृष्ट पर ॥ १००० ॥

तब कहे श्रीगुरु महान । मिलेगा यह प्रसाद-दान ।
इससे सुखी मनही मन । हुवा ज्ञानदेव ॥ १ ॥

गीता श्लोक ७८

ओवी १८०१

ज्ञानेश्वरी संपूर्ण

ॐ

—:श्रीगुरुका प्रसाद-दान ग्रंथ लेखनका स्थान कालः—

ऐसे यह कलियुगमें । है महाराष्ट्रमंडलमें ।
गोदावरीके किनारेमें । दक्षिणका जो ॥ १ ॥

या त्रिभुवनैक पवित्र । अनादि पंचक्रोश क्षेत्र ।
जगका जहां जीव-सूत्र । है महालया ॥ २ ॥

वहां यदुवंश विलास । जो सकलकलानिवास ।
न्यायसे पोसता क्षितीश । श्रीरामचंद्र ॥ ३ ॥

वहां महेशान्वय संभूत । है जो श्रीनिवृत्तनाथ सुत ।
गाया ज्ञानदेव ये गीत । देशीका भूषण ॥ ४ ॥

एवं श्रीभारतकी गोदमें । प्रसिद्ध भीष्मनाम पर्वमें ।
श्रीकृष्णार्जुनने वैभवमें । गोष्टि जो की है ॥ ५ ॥

उपनिषदका है सार । सब शास्त्रोंका मातृ-घर ।
परम-हंस सरोवर । करते सेवन ॥ ६ ॥

उस गीताका यह कलश । संपूर्ण हुवा है अष्टादश ।
कहता श्रीनिवृत्तिका दास । ज्ञान देव ॥ ७ ॥

पुनः पुनः आगे भी इससे । इस ग्रंथ पुष्प-संपत्तिसे ।
सर्वभूत सर्वतोमुखसे । होना है संपूर्ण ॥ ८ ॥

श्रीशक बारह शत बारा । टीका बोला यह ज्ञानेश्वर ।
सच्चिदानंद बाबा सादर । हुवा लिपिक ॥ ९ ॥

ॐ

महाराष्ट्रके दूसरे एक महान संत श्री एकनाथ महाराजने ज्ञानेश्वरी ग्रंथका संशोधन करके इस ग्रंथके विषयमें निम्न अभिप्राय लिख रखा है ।

श्रीशक पंद्रह सौ छ उत्तर । आया तारण नाम संवत्सर ।
एका जनार्दनने अत्यादर । की ज्ञानेश्वरी प्रति शुद्ध ॥ १ ॥

पहले ही था ग्रंथ अति शुद्ध । पाठांतरसे था शुद्ध अबद्ध ।
शोधित कर वह एवं विध । शुद्ध सिद्ध प्रति ज्ञानेश्वरी ॥ २ ॥

नमो ज्ञानेश्वर निष्कलंक । पढके उनके गीता टीका ।
ज्ञानी होंगे जो ग्रंथार्थि लोक । भाविक अत्यंत ॥ ३ ॥

बहुकाल पर्वणी गोमटी । भाद्रपदकी कपिला षष्टी ।
प्रतिष्ठानमें है गोदा तटी । लेखन संपूर्ण ॥ ४ ॥

ज्ञानेश्वर - स्तुति - सुमन

संत - नामदेव

ज्ञानराज मेरी योगियोंकी माय । उनसे प्रकट हुवा निगमकाय ॥ १ ॥

गीता अलंकार नाम ज्ञानेश्वरी । प्रकट गई है ब्रह्मानंदलहरी ॥ २ ॥

अध्यात्म - विद्याका दिखाया है रूप । उजला दिया है चैतन्य - महादीप ॥ ३ ॥

देशी भांषाओंका किया है गौरव । छोड दी उसने भावार्णवमें नाव ॥ ४ ॥

श्रवण निमित्त बैठना आकर । स्वानंद पीठपे सुखसे निरंतर ॥ ५ ॥

नामा कहे श्रेष्ठ ग्रंथ ज्ञानेश्वरी । प्रतीत करो जी चितमें एक ओवी ॥ ६ ॥

ॐ

संत एकनाथ महाराज—

कैवल्यका है पूतला । प्रकट हुवा है भूतला ।
चैतन्यकी जो चित्कला । ज्ञानदेव मेरा ॥

साधकके हैं मायबाप । दर्शनसे हरता पाप ।
सब भूतोंमें सुखरूप । ज्ञानदेव मेरा ॥
ज्ञानियोंका जो मुकुटमणि । चिंतनशीलोंका चिंतामणि ।
पूज्य स्थानमें जो महान ज्ञानी । ज्ञानदेव मेरा ॥

चलाकर दिखायी जड़ भित्ति । हरण की चांगदेवकी भ्रांति ।
मोक्ष-मार्गका है महान साथी । ज्ञानदेव मेरा ॥

भैंसेके मुखसे वेद कहलाया । ब्रह्म वृंदका अभिमान मिटाया ।
शांतिका पुतला बन व्यक्त भया । ज्ञानदेव मेरा ॥

परब्रह्म साम्राज्यकी है दीपिका । कही तूने गीताकी भावार्थ दीपिका ।
पंढरीके विठलका तू प्राणसखा । ज्ञानदेव मेरा ॥

गुरुसेवाके लिये जान । शरण एका जनार्दन ।
त्रिभुवनका जीवन । ज्ञानदेव मेरा ॥